



पड़ौसी देश

क्या पाकिस्तान की चूलें हिल रही हैं?

सन् १९७४ में अपनी बांग्लादेश की यात्रा के समय वहां के एक करोड़पति मुसलमान व्यापारी से जब मेरी भेंट हुई तो उसकी एक बात ने मुझे चौंका दिया। तब तक बंग बन्धु मुजीब और भारत के विरोध में वातावरण निरन्तर गर्म होता जा रहा था। इस भारत विरोधी वातावरण के कारण बांग्लादेश में स्थित भारतीय उच्चायोग ने मुझे सलाह दी थी कि मैं वहां किसी भी व्यक्ति से राजनीतिक बहस में न पड़ूं। उस मुसलमान व्यापारी ने, जो कभी नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के फारवर्ड ब्लाक का भी सक्रिय कार्यकर्ता रहा था, मेरे सामने जब इन्दिरा गांधी के प्रति आक्रोश व्यक्त किया, तो मैंने उससे कहा कि जिस व्यक्ति ने तुमको पाकिस्तान की तानाशाही से मुक्त कराने के लिए भारत के जन-धन की इतनी बड़ी कुर्बानी दी, क्या उसके उपकार को न मानना कृतघ्नता की कोटि में शामिल नहीं होगा? उस व्यापारी ने सहज भाव से कहा—नहीं आप मुझे गलत न समझें। इन्दिरा गांधी ने जो उपकार हम पर किया है, उससे हम कभी उन्मत्त नहीं हो सकते। परन्तु मुझे आक्रोश इस बात पर है कि पाकिस्तान के खूनी पंजे से छुड़ाने के बाद इन्दिरा गांधी हमको लावारिस बनाकर छोड़ गईं।

मैंने कहा—“यह आप क्या कहते हैं? बच्चे जब जवान हो जाते हैं, तब समझदार माता-पिता का कर्तव्य यही है कि वे उनको अपना अलग घर बनाने की पूरी छूट दें। इन्दिरा गांधी ने बांग्लादेश के साथ यही किया है। आपको आज़ाद करा के आपकी बागडोर आप लोगों के हाथ में सौंप दी। अब जैसे आप लोग चाहें, अपने देश को चलाएं।” उस व्यापारी ने फिर कहा—“मेरा मंशा अब भी आप नहीं समझे। मेरा कहना यह है कि—जिस तरह इन्दिरा गांधी ने भारत में असम का विभाजन करके मेघालय, नागालैण्ड, अरुणाचल, मिज़ोरम और मणिपुर जैसे राज्यों में बांट दिया, उसी प्रकार बांग्लादेश को विजय प्राप्त करने के पश्चात् वे हमारे इस प्रदेश को भी भारत का एक छोटा सा प्रान्त बना देतीं, तो कितना अच्छा होता!”

एक मुसलमान करोड़पति व्यापारी के मुंह से इस प्रकार की बात ने मुझे चौंका दिया। मैंने सीधा सवाल किया—“उससे आपको क्या लाभ होता?” उसने कहा—“हमें

लाभ यह होता कि जिस तरह सारे भारत में लोकतंत्र के आधार पर शासन—प्रणाली चल रही है, वैसा ही लोकतंत्र हमारे यहां भी होता। भारत के अन्य प्रदेशों की तरह हमारे यहां भी उसी लोकतंत्र—प्रणाली से आम चुनाव होते और उन चुनावों में आखिर हम लोग ही तो विजय प्राप्त करके सत्ता संभालते। लोकतंत्र की पद्धति के अनुसार हमारे प्रदेशों की सत्ता संभालने के लिए इन्दिरा गांधी को तो आना नहीं था। इसके अलावा दूसरा लाभ यह होता कि जब कभी हमारे इस प्रदेश में अकाल या बाढ़ की विभीषिका उत्पन्न होती तो पूरा—का—पूरा विशाल भारत महादेश हमारी सहायता को उमड़ पड़ता। जबकि आज ऐसी किसी विपत्ति के समय हम सर्वथा अकेले पड़ जाते हैं और केवल विदेशों की सहायता की ओर टकटकी लगाकर देखते रहते हैं।”

मैं नहीं जानता कि बांग्लादेश में उस मुसलमान करोड़पति की तरह सोचने वाले और कितने लोग होंगे, परन्तु उस दिन मुझे आभास हुआ कि लोकतंत्र की पद्धति से मनुष्य को किस प्रकार अपनी अस्मिता की और आत्म—गौरव की अनुभूति होती है। लोकतंत्र की भी अपनी समस्याएं हैं। परन्तु निःसन्देह प्रत्येक मनुष्य को वोट का अधिकार प्राप्त करके जब अपने प्रतिनिधियों को अपनी मर्जी से चुनने का अधिकार मिलता है तो एक प्रकार से उसके प्रच्छन्न अहं की तुष्टि होती है। यह ठीक है कि लोकतंत्र में भी वोट खरीदे जाते हैं। परन्तु उससे भी तो मतदाता को अवसर—विशेष पर अपने अस्तित्व का बोध तो होता ही है। ऐसा लगता है कि पाकिस्तान के अन्दर भी धीरे—धीरे लोकतंत्र के प्रति और आत्म—गौरव की भावना के प्रति रुझान निरन्तर बढ़ता जा रहा है। दो राष्ट्रों के जिस सिद्धान्त पर पाकिस्तान का निर्माण हुआ था, अब स्वयं पाकिस्तान के निवासियों में उस सिद्धान्त के प्रति आस्था ढगमगा रही है। पाकिस्तान में भारत विरोधी भावना कम हो गई है या मौका पड़ने पर नहीं भड़कायी जा सकती, यह तो नहीं कहा जा सकता। परन्तु जिन लोगों ने पाकिस्तान के निर्माण में सबसे अहं भूमिका अदा की थी, लगता है कि अब उनका स्वप्न मंग होता जा रहा है।

कायदे—आज़म जिन्ना के द्वारा लगाए गये हिन्दू मुसलमान के दो कौमों के नारों को जितना समर्थन उत्तर भारत के मुसलमानों ने दिया था उतना वर्तमान पाकिस्तान के अंगभूत प्रान्तों ने कभी नहीं दिया था। विभाजन से पूर्व के दिनों में केवल सिन्ध प्रान्त में ही लीगी मंत्री—मंडल बन चुका था, सीमा प्रान्त, बलोचिस्तान और पंजाब में भी जिन्ना की दाल नहीं गली थी। इसलिए पाकिस्तान के निर्माण का श्रेय यदि किसी को है तो भारत के उन मुसलमानों को ही है जिन्होंने जिन्ना का समर्थन किया था। देश के विभाजन के पश्चात् उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश के ही अधिकांश मुसलमान भारत को पराया वतन समझ कर इस्लाम के स्वर्ग

पाकिस्तान में हिज़रत करके गये थे। इस हिज़रत के कारण ही वे सब भारतीय मुसलमान वहां "मुहाजिर" (शरणार्थी) कहलाए। भारत में भी पंजाब से आने वाले सब हिन्दू शुरु-शुरु में शरणार्थी कहलाते थे, परन्तु ३६ साल की इस अवधि में उनका शरणार्थीपना सर्वथा समाप्त हो चुका है और वे पूरी तरह भारतीय जन जीवन के अंग बन चुके हैं। जबकि पाकिस्तान के यह "मुहाजिर", जो पाकिस्तान के असली निर्माता हैं, वे आज भी मुहाजिर के मुहाजिर बने हुए हैं। वे पाकिस्तान के जन-जीवन का अंग नहीं बन पाये। पाकिस्तान के निवासी जो अन्य प्रमुख वर्ग हैं— जैसे सिन्धी, पंजाबी, बलोच या पठान—वे सब अभी तक इन मुहाजिरों को अपने से सर्वथा भिन्न समझते हैं। भारत से गये इन मुसलमानों के रीति-रिवाज, खान-पान और वेश-विन्यास की जैसी समानता भारतीय मुसलमानों के साथ है, वैसी पाकिस्तान के उक्त वर्गों के साथ नहीं। ये मुहाजिर निरपवाद रूप से उर्दू-भाषी हैं और उर्दू को पाकिस्तान की राजभाषा भी मान लिया गया है, परन्तु इसी कारण पश्तों, सिन्धी और पंजाबी के बोलने वालों के मन में उर्दू और उर्दू-भाषियों के प्रति सहज घृणा है।

शुरु-शुरु में ये भारतीय मुसलमान जब पाकिस्तान गये तो पाकिस्तान-निर्माता होने का श्रेय प्राप्त करने के कारण वहां इनका खूब स्वागत भी हुआ। इनमें से अधिकांश लोग सुशिक्षित थे, इसलिए इनको सरकारी काम-काज में भी सब तरह से तर्जिह दी गई। परन्तु धीरे-धीरे जब अन्य वर्गों को बेरोज़गारी का सामना करना पड़ा तो सरकार की ओर से विशेष सुविधा प्राप्त इन मुहाजिरों के प्रति पाकिस्तान के मूल निवासियों में ईर्ष्या और घृणा उभरने लगी। गत मास दिसम्बर के महीने कराची में मुहाजिरों और पठानों के बीच जैसी भयंकर मारकाट हुई, उससे यह बात स्पष्ट हो गई कि केवल इस्लाम पाकिस्तान को एकता, राष्ट्रीयता और लोकतंत्र देने में तो असफल रहा ही, मुसलमानों को मुसलमानों से जोड़ने में भी इस्लाम नाकामयाब रहा। पाकिस्तान की बुनियाद इस्लाम है यह भ्रम भी चकनाचूर हो चुका है। उत्तर भारत से गए उर्दू भाषी मुसलमान दारुल और इस्लाम का स्वप्न देखते हुए पाकिस्तान के स्वर्ग में गए थे। परन्तु जब उनको सिंधियों और पठानों की सनसनाती गोलियों का सामना करना पड़ा तब उनका स्वप्न भंग न हो यह कैसे हो सकता था। अब उनको लगता है कि इससे तो हम भारत में ही अच्छे थे। परन्तु अब जायें कहां। पाकिस्तान में अपने से भिन्न सब वर्गों की नजरों में वे खटकते हैं और भारत लौटने का रास्ता वे स्वयं अपने हाथों बन्द कर चुके हैं। जिस तरह बंगलादेश में तथाकथित बिहारी मुसलमानों की गत बनी कुछ वैसी ही स्थिति पाकिस्तान के इन मुहाजिरों के सामने भी उपस्थित हुई। उन बिहारी मुसलमानों ने बंगलादेश की जनता की इच्छा के विरुद्ध पाकिस्तान की सेना का समर्थन किया

था। इसलिए बांग्लादेश के आज़ाद हो जाने के पश्चात् उनके लिए उस देश में जगह नहीं रही। इधर पाकिस्तान भी उन बिहारी मुसलमानों को स्वीकार करने से कतराता रहा। भारत के सीमावर्ती प्रदेशों में घुसपैठ का बहुत बड़ा कारण ये बिहारी मुसलमान ही हैं जिनको अब भी बांग्लादेश और पाकिस्तान के बजाय भारत में कहीं अधिक अपनी सुरक्षा प्रतीत होती है। पाकिस्तान के इन मुहाजिरों को भी लगता है कि हम पाकिस्तान में दूसरे दर्जे के नागरिक हैं। हालांकि जब उनके मां-बाप अपने साम्प्रदायिकता के आवेश में भारत छोड़कर पाकिस्तान आए थे, उसके बाद अगली पीढ़ी तैयार हो चुकी है, जिसका जन्म ही पाकिस्तान में हुआ है। परन्तु इस सारी नई पीढ़ी को पाकिस्तान में कहीं अपनत्व नहीं मिलता। उनको लगता है कि पाकिस्तान में हमारा कोई भविष्य नहीं है।

स्वयं जनरल ज़िया भी मुहाजिरों की श्रेणी में आते हैं परन्तु जिस आशा से मुहाजिर उनकी ओर देख सकते हैं, उतनी ही बड़ी निराशा जनरल ज़िया के मुहाजिर होने के कारण सिंधियों, बलोचियों और पठानों के मन में पैदा होती है।

लगभग दो करोड़ भारतीय मुसलमान पाकिस्तान गए थे जिनमें से काफी बड़ी संख्या को सिन्ध में बसाने का प्रयत्न किया गया। व्यापार का प्रमुख केन्द्र होने के कारण रोज़गार की सबसे अधिक संभावनाएं कराची में थी। इसलिए करीब दो लाख मुहाजिर कराची और उसके आसपास के प्रदेश में अपना जीवन निर्वाह कर रहे थे। परन्तु सन् ८५ और सन् ८६ में पठानों और मुहाजिरों के बीच भीषण रक्त-रंजित संघर्ष हुए हैं। उन संघर्षों ने इन दोनों वर्गों के बीच वैमनस्य की ऐसी गहरी खाई खोद दी है, जिसे कभी आसानी से पाटा नहीं जा सकेगा। जिस २५ दिसम्बर को पाकिस्तान के जन्मदाता मुहम्मद अली जिन्ना का जन्म दिन था (जिन्ना का जन्म भी कराची में ही हुआ था) उसी २५ दिसम्बर को अपने जन्मदाता का जन्म दिन मनाने के बजाय पाकिस्तान के निर्माण में अपना तन-मन-धन झोंक देने वाले मुहाजिरों के घरों में मातम छाया हुआ था। पठानों ने जिस प्रकार ट्रकों और स्टेशन-वैगनों में हथियार भर कर मुहाजिरों की बस्ती पर हमला किया, अन्धाधुन्ध फायरिंग की, पेट्रोल छिड़ककर दुकान और मकानों को आग लगायी और भागने वालों को पकड़-पकड़ कर आग में ही झोंक दिया, न औरतों को बख्शा, न बच्चों को। उन लाशों और कराहते हुए घायल लोगों के जिस्म क्या कभी दरार को भरने देंगे।

सिन्ध में "जिए सिन्ध" का आन्दोलन चलता रहा है। बलोच और पठान निरन्तर पृथक् पख़्तूनिस्तान की मांग करते रहे हैं। अन्य लोग सत्ता और सेना में पंजाबियों के वर्चस्व से परेशान हैं। और उधर पाकिस्तान में लोकतंत्र की बहाली के लिए

बेनज़ीर भुट्टो का आन्दोलन भी अपनी जगह पर है ही। लगता है पाकिस्तान के इन सभी वर्गों का पृथक देश के निर्माण का स्वप्न भी भंग हुआ है और मोह भी भंग हुआ है और अपने आपको पाकिस्तान का निर्माता समझने वाले मुहाजिर तो अब न इधर के रहे न उधर के रहे। क्या यह समझा जाय कि पाकिस्तान की घूलें हिल रही हैं।

१८ जनवरी १९८७



‘हिन्दू और मुसलमान को अलग राष्ट्र मान लेने के विरोध में महात्मा गांधी का तर्क तो बड़ा स्पष्ट था। उनका कहना था कि ‘मेरा लड़का हीरा लाल गांधी यदि अब्दुल्ला गांधी के रूप में मुसलमान बन जाता है, तो क्या मैं उसका बाप नहीं रहूंगा? या उसका राष्ट्र अलग हो जाएगा?’ इसीलिए वे सदा कहते रहे कि ‘पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा’। जब नेहरू और पटेल दोनों देश-विभाजन की आंग्ल-कूटनीति से सहमत हो गए, तो अन्त में गांधीजी भी झुक गए, और उन्होंने कहा कि “जब मेरे दोनों सिपहसालार सहमत हैं, तो अब मैं क्या कर सकता हूँ?”

नेहरू और पटेल विभाजन के लिए क्यों सहमत हुए? अन्तरिम सरकार में नेहरू प्रधानमंत्री और सरदार पटेल गृहमंत्री या उप-प्रधानमंत्री थे। मुस्लिम लीग साझीदार थी। आधे मंत्री मुस्लिम लीग के थे। उन लीगी-मंत्रियों ने जब प्रशासन के दैनन्दिन कार्यों में भी अड़ंगे लगाने शुरू किये, तब दोनों ने खीझ कर यह सोचा कि इससे तो इनका अलग हो जाना ही अच्छा। अंग्रेज़ तो तैयार बैठे ही थे।...

एक रहस्य और भी है, जो खुल जाता तो देश का विभाजन न हो पाता। जिन्ना को कैंसर था और इस रहस्य को जान-बूझकर प्रयत्नपूर्वक उजागर नहीं होने दिया गया। शायद माउण्टबेटन को इसकी कुछ भनक लग गई थी, इसीलिए वे जल्दी से जल्दी विभाजन करके रंगमंच से गायब हो जाना चाहते थे। यदि नेहरू और पटेल को इसकी भनक लग जाती तो कदाचित् कुछ दिन वे और धैर्य धारण कर लेते, क्योंकि जिन्ना के सिवाय और कोई पाकिस्तान की वकालत करने वाला इतना जबर्दस्त वकील नहीं था”

-कश्मीर : झुलसता स्वर्ग
पूर्वकथन, पृष्ठ ८-९

लंका में राम की विजय होगी?

विजय दशमी का पर्व मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम द्वारा रावण—वध और लंका—विजय के साथ जुड़ा हुआ है। यह ऐतिहासिक घटना तो बहुत पुरानी है, परन्तु जनमानस में इस प्रकार के पर्वों के माध्यम से भी उसकी स्मृति अक्षुण्ण है। इस समय भी लंका में एक संघर्ष चल रहा है। इतिहासकारों की दृष्टि में भले ही यह लंका वह लंका न हो और इस समय भारतीय सेना को जिस प्रकार वहां तमिल उग्रवादियों से मोर्चा लेना पड़ रहा है, उसकी तुलना भी किसी रूप में राम—रावण—युद्ध से नहीं की जा सकती। परन्तु फिर भी समस्त दक्षिण पूर्वी एशिया में अपने महत्त्व को कायम रखने के प्रतीक के रूप में जिस धूम—धड़ाके से भारत कोलम्बो समझौता हुआ था, उसके कारण यह संघर्ष भी तात्कालिकता की दृष्टि से उतना ही महत्त्वपूर्ण हो उठा है। कभी अमरीका ने सन् १८२३ में मूनरौ सिद्धान्त के द्वारा यूरोपियन उपनिवेश—वादी देशों को अमरीकी महाद्वीप से दूर रहने की चेतावनी दी थी। कुछ इसी तरह दक्षिण—पूर्वी देशों के सम्बन्ध में भी अन्य महाशक्तियों के दखल के बिना अपनी इच्छा से बांग्लादेश का निर्माण या श्रीलंका से समझौता भारत के प्रभाव की ऐतिहासिक पुष्टि थी। परन्तु समझौता होने वाले दिन ही भारत के प्रधानमंत्री की वापसी पर जिस तरह सलामी देने वाली गारद के एक सिपाही ने बन्दूक के कुन्दे से हमला किया, वह इस समझौते के लिये कुछ शुभ शकुन नहीं था। कभी पंजाब समझौते और असम समझौते के कारण राजीव गांधी की जिस भाव—विभोर ढंग से प्रशंसा की गई थी, जनता के एक वर्ग ने उसी ढंग से श्रीलंका समझौते को भी काफी चढ़ाया था। परन्तु जिस तरह पंजाब समझौता या असम समझौता कारगर नहीं हुआ, उसी तरह अब भारत और श्रीलंका समझौता भी खटाई में पड़ता नजर आ रहा है।

पहले तमिल और सिंहली बौद्ध दोनों उग्रवादी ढंग से आमने—सामने थे, और श्रीलंका की सरकार सिंहलीओं का समर्थन कर रही थी। ज्यों—ज्यों सरकार का दमन बढ़ता गया, त्यों—त्यों तमिलों का उग्रवाद भी बढ़ता गया। श्रीलंका के राष्ट्रपति श्री जयवर्द्धने जो पहले किसी भी शर्त पर झुकने को तैयार नहीं थे, अब उन्होंने भारत को बीच में डालकर एक ऐसा समझौता किया है, जिसको पूरा करने की

जिम्मेवारी भारत सरकार की ही बन जाती है। हालांकि तमिल-उग्रवादियों से निपटने का जहां तक प्रश्न था, वह श्रीलंका का केवल घरेलू मामला था। परन्तु तमिलों के मूलतः भारतवंशी होने के कारण भारत की उनके प्रति या उनकी भारत के प्रति सहानुभूति तो थी ही। तमिल-उग्रवाद को तमिलनाडु से जिस प्रकार से सहायता मिलती थी उसके बारे में श्रीलंका को वैसी ही शिकायत थी जैसी भारत को पंजाब के आतंकवादियों को पाकिस्तान से सहायता देने की शिकायत है। परन्तु कुछ और पुराने इतिहास के वातायन से झांककर देखें तो जिस तरह तमिल मूलतः भारतवंशी हैं, उसी तरह सिंहली बौद्ध भी मूलतः भारतवंशी ही हैं। अन्तर इतना है कि श्रीलंका के तमिल तमिलनाडु से सम्बन्धित हैं, और सिंहली उत्तर भारत के बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश से सम्बन्धित। मूलतः एक देश के होने पर अगर ये परस्पर विरोधी खेमों में बंट गये, उसका कारण राजनीति और सत्ता-प्राप्ति का मोह ही था। सिंहासन पर नियंत्रण सिंहलियों का था। वे उसमें तमिलों की भागीदारी नहीं चाहते थे, जबकि श्रीलंका के व्यापारिक औद्योगिक और चाय-बागान के विकास में तमिलों का बहुत बड़ा योगदान था। इसके अलावा श्रीलंका में तमिलों की संख्या इतनी नगण्य भी नहीं थी कि उनकी सर्वथा उपेक्षा की जाती। सारे भारत में सिखों की आबादी केवल डेढ़ या दो प्रतिशत है और श्रीलंका में तमिलों की आबादी ३२ प्रतिशत से भी अधिक है। सिखों के प्रति अन्याय और अत्याचार का कोलाहल मिथ्या और निराधार था, जबकि तमिलों के प्रति सिंहलियों का अत्याचार एकदम स्पष्ट था।

भारत के साथ समझौता हो जाने और भारतीय शान्ति-सेना के श्रीलंका में पहुंच जाने के बाद सिंहलियों का उग्रवाद तो शान्त हो गया और श्रीलंका की सरकार ने अपनी ओर से समझौते का पालन करने में शिकायत का भी कोई अवसर नहीं दिया, परन्तु अब स्वयं तमिल ही इस समझौते को विफल करने में लगे हुए हैं। इसका कारण क्या है? यहां भी सत्ता-प्राप्ति के आसार देखकर अधिक से अधिक अधिकार हथियाने की संकीर्ण मनोवृत्ति ही वर्तमान संघर्ष का कारण है। सबसे बड़ी बुरी बात यह है कि सिंहलियों के साथ संघर्ष के समय तमिलों के जो गुट आपस में एक दिखाई देते थे, अब वे ही आपस में मारकाट में लगे हुए हैं। मुक्ति मोर्चे के नेता प्रभाकरन ने भारत सरकार के दबाव के कारण ही अनिच्छा-पूर्वक समझौते को स्वीकार किया था। अब उनके अनुयायी जहां हथियार सौंपने को तैयार नहीं हैं, वहीं अन्य तमिल गुटों के साथ सत्ता में भागीदारी के लिये भी तैयार नहीं हैं। पहले उदार और मध्यमार्गी समझा जाने वाला "तुल्फ" नामक संगठन, जिसके नेता अमृत लिंगम् हैं, और इस समय अनशन पर हैं, इस बात से नाराज हैं कि मुक्ति मोर्चे के चीतों को क्यों महत्त्व दिया जा रहा है। और चीते तो स्वयं चीते

की सवारी के जौम में हैं ही, परन्तु चीते की सवारी में हमेशा एक कठिनाई होती है। चीते पर सवारी करना जिस तरह खतरे से खाली नहीं, उसी तरह उस सवारी से उतरना भी खतरे से खाली नहीं हैं। आतंकवादी की सबसे बड़ी खराबी यही है कि वे जब तक साथ मिलकर हत्या और लूटपाट में शामिल होते हैं, तब तक तो उनकी एकता बनी रहती है; परन्तु उससे विचलित होते ही वे आपस में ही एक दूसरे की जान के ग्राहक बन जाते हैं। मुक्ति-मोर्चे के लोगों ने पिछले दिनों अन्य नागरिकों के साथ तमिलों की भी नृशंसता-पूर्वक हत्या की है।

मुक्ति मोर्चे के चीतों की शिकायत है कि भारतीय शान्ति सेना ने उत्तर में ही अपने शिविर क्यों बनाये हैं, पूर्वी इलाकों में क्यों नहीं बनाये? उत्तर में इन चीतों का बाहुल्य है, और पूर्व में तुल्फ वालों का। वैसे पिछले दिनों तमिल-संघर्ष का मुख्य केन्द्र जाफना ही रहा है, जो श्रीलंका के उत्तरी भाग में पड़ता है। भारतीय शान्ति सेना के सामने उनके हथियारों के समर्पण के बाद सिंहली सेना अपनी बैरकों में लौट गई। परन्तु अब इन मुक्ति चीतों ने भारतीय सेना की ही आलोचना शुरू कर दी है। अगर भारतीय सेना उनकी उग्रवादी हरकतों को दबाने के लिये शक्ति का प्रयोग करती है, तो वे भारतीय सेना के और विरोधी हो जायेंगे और समझौते पर अमल उतना ही कठिन हो जायेगा। भारत सरकार ने अपनी ओर से इन चीतों के दमन का आदेश दिया है, वहीं सुरक्षा-बल की और टुकड़ी भी श्रीलंका भेजी है ताकि भारतीय सेना स्थानीय उग्रवाद से भलीभांति पार पा सके। जब तक उग्रवादी हथियार नहीं डालते और संघर्ष से बाज नहीं आते, तब तक पूर्वी या उत्तरी इलाकों की जनतंत्रीय आधार पर शासन परिषद् बनने का रास्ता भी साफ नहीं होता। यदि भारत समझौते पर अमल करवाने के लिये शक्ति का प्रयोग न करे तो समझौते की विफलता की जिम्मेवारी भी भारत को ही ओढ़नी होगी। उधर तमिल चीते आसानी से बाज आने वाले नहीं हैं क्योंकि चीतों के मुंह खून लग चुका है।

यह बड़ी अवांछनीय स्थिति होगी। तब श्रीलंका की सरकार अपने आपको सुरखर सिद्ध करने के लिये कह सकती है कि हमने अपने सारे वायदे पूरे कर दिये, परन्तु भारत सरकार ने अपना वायदा पूरा नहीं किया। ३१ दिसम्बर १९८७ से पहले तमिल इलाकों में इस मुद्दे पर जनमत-संग्रह होना है कि उत्तरी और पूर्वी हिस्से एक इकाई बनेंगे, या अलग-अलग दो इकाईयाँ बने रहेंगे। उत्तरी इलाके में तमिलों का भारी बहुमत है, और पूर्वी इलाके में जिसमें तीन जिले शामिल हैं, सिंहली आबादी भी कम नहीं है। परन्तु इसमें एक पेच और पड़ गया है। तीनों पूर्वी जिलों में मुसलमानों की जनसंख्या भी बहुत है, और वे सबके सब तमिल-भाषी हैं। शेष तमिल हिन्दू भी हैं। परन्तु अभी तक इन पूर्वी जिलों में तमिलों के विभाजन की कोशिश सफल नहीं हुई थी क्योंकि सिंहली बौद्ध भिक्षुओं के धार्मिक द्वेष के

आगे हिन्दू और मुस्लिम तमिल भाषा और सांस्कृतिक दृष्टि से एक जुट बने रहे। परन्तु अब मुक्ति मोर्चे के चीतों ने जिस तरह मुसलमानों की दुकानें जलाई हैं और उनकी हत्या की है, उससे मुसलमान तमिल चीतों के विरुद्ध हो गये हैं। ये चीते नहीं चाहते कि पूर्वी और उत्तरी इलाके की एक इकाई बने। वे उत्तरी इलाके में अपना पूर्ण वर्चस्व चाहते हैं। जबकि पूर्वी इलाकों के लोग दो ईकाइयों के बजाय पूर्वी और उत्तरी इलाकों को मिलाकर एक इकाई बनाने के पक्ष में हैं। यह फिर वही संकीर्ण मनोवृत्ति की निशानी है। जैसे रोटी के किसी टुकड़े पर दो कुत्ते आपस में लड़कर लहू-लुहान हो जाते हैं, और रोटी का टुकड़ा ज्यों का त्यों पड़ा रहता है, कुछ वैसी ही पशु-वृत्ति इन तमिल गुटों में दिखाई देती है। इसी से शंका होती है कि भारत के प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने अपने पड़ौस में जिस आग को इतनी मुश्किल से बुझाया था, वह आग पूरी तरह बुझेगी या और प्रचण्ड होगी। इस बार विजय-दशमी के अवसर पर लंका में राम की विजय पर इसीलिये शंका का अवसर उपस्थित हो गया है।

४ अक्टूबर १९८७



‘कुछ मनस्वी, कर्मशील पुरुष लक्ष्य निर्धारित करके काल-सरिता की लहरों को अपने बाहुबल से चीरते हुए आगे बढ़ते हैं और अपने लक्ष्य तक पहुंचते भी हैं। श्री क्षितीश उन्हीं मनस्वी पुरुषों में से हैं। उनका जीवन समाज-सेवा के लिए अर्पित रहा है।

उनमें ब्रह्म और क्षत्र गुणों का सुन्दर समन्वय है। वह परिश्रमशील अध्येता, विचारक, विद्वान् उपदेशक हैं। अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए वे सतत उद्यत सैनिक हैं। साथ ही वे व्यवहार कुशल भी हैं। परस्पर विरोधी विचार वाले साथियों में मतैक्य स्थापित करने की कला उन्हें आती है। इसीलिए उनसे किसी का विरोध नहीं हो पाता। उनका हंसमुख चेहरा, मृदु भाषण और सौम्य स्वभाव सबको अपना आत्मीय बनाये रखता है।’

-विराज (उदयवीर जी)

एच-१, नवीन शाहदरा, दिल्ली

बाज पराये पाणि पै.....

राजनीति की बिसात भी कैसी विचित्र है? अफ़गानिस्तान से सोवियत संघ द्वारा अपनी सेना हटाये जाने की घोषणा के साथ जहां महाशक्तियों के व्यवहार में एक नया समीकरण आया था और सारे संसार ने राहत की सांस ली थी, वहां इसके साथ ही पाकिस्तान का एक खेल खत्म हुआ और दूसरा शुरू हो गया। जब तक अफ़गानिस्तान में रूसी सेना का हऊआ दिखाकर वह अफ़गान शरणार्थियों के नाम पर अमरीका से मनचाही मदद पाता रहा, पर हऊवे का डर नहीं रहा तो उसने भारत के विरुद्ध बाकायदा भोर्चा खोल दिया। यूं तो पहले भी अफ़गान शरणार्थियों को जिस प्रकार के हथियारों की मदद मिलती रही है, उसका उपयोग पाक-अफ़गान सीमा के बजाय भारत-पाक सीमा पर ही अधिक सम्भव था। आखिर अवाक्स विमान लेकर पाकिस्तान अफ़गानिस्तान के लिये उनका कैसे उपयोग करता, परन्तु फिर भी एक परदे की ओट तो थी। अमरीका के कूटनीतिज्ञों को शाबाशी देनी होगी कि उस ओट के खत्म हो जाने पर भी, उन्होंने पाकिस्तान को मिलने वाली मदद में किसी प्रकार की कमी न करने का आश्वासन दिया है। फिर वही राजनीतिक शतरंज की बात! आखिर अफ़गानिस्तान की सीमा के खाली हुए अफ़गान मुजाहिद और सऊदी अरब से लौटे पाकिस्तानी सैनिक अब खाली थोड़े बैठेंगे। उनको भी तो व्यस्त रखने के लिये कुछ न कुछ काम चाहिये। इसीलिये भारत-पाक-सीमा फिर गर्म हो उठी है और पंजाब में आतंकवादियों की कार्यवाहियों में अपने पुराने सब विकार छोड़ दिये हैं।

भारत सरकार पिछले तीन वर्षों से कहती चली आ रही है कि आतंकवादियों के पीछे पाकिस्तान का हाथ है। अब वही राग उसने थोड़ा और ज़ोर से अलापना शुरू कर दिया है। अब से तीन वर्ष पहले जब पत्रकारों ने प्रधानमंत्री से कहा कि यदि आप यह समझते हैं कि आतंकवादियों को प्रशिक्षण, हथियार और धन की सहायता पाकिस्तान दे रहा है, और जहां-जहां उनके प्रशिक्षण कैंप हैं, उनकी भी जानकारी आपको है, तो आप कोई सीधी सख्त कार्यवाही क्यों नहीं करते? जिस तरह इज़राइल ने ईराक के अणु-शक्ति के अड्डों को ध्वस्त कर दिया, या अमरीका ने खाड़ी के क्षेत्र में केवल संदेह का लाभ लेकर ही इरान के टैंकरों पर हमला कर दिया। उसी

तरह की कार्यवाही पाकिस्तान के विरुद्ध भारत क्यों नहीं करता? इस प्रकार की कार्यवाही से सारे संसार के सामने पाकिस्तान की खालिस्तान-समर्थक साज़िश का भंडाफोड़ हो जायेगा। परन्तु तब प्रधानमंत्री ने यह कहकर इस बात को टाल दिया कि इस प्रकार की बात सार्वजनिक रूप से नहीं कही जा सकती है। परन्तु अब यदि आतंकवादियों को सब तरह की शह देने के लिये पाकिस्तान को दोषी ठहराया जा रहा है, तो पिछले तीन वर्ष का समय बर्बाद क्यों किया? इसके अलावा सरकार ने पिछले साल सीमावर्ती प्रदेश पर सुरक्षा-पट्टी बनाने का और उसे सेना के हवाले कर देने का अधिकार तो संसद से प्राप्त कर लिया, परन्तु उस पर कार्यवाही अब तक नहीं हुई। अब हाल में ही सरकार ने संविधान का ५६वां संशोधन स्वीकार करवा कर विपक्षी दलों के विरोध के बावजूद संसद में अपने प्रबल बहुमत के आधार पर पंजाब में आपातकाल लगाने का और सीमा को सील करने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया। परन्तु आज तक न तो सीमा पर सुरक्षा-पट्टी बनी, और अब तो सीमा को पूरी तरह सील करने की बात भी अव्यावहारिक बताई जा रही है। यदि इमरजेंसी का अधिकार प्राप्त करके सरकार कोई सख्त कदम उठाना ही चाहती है, तो उसका भी कहीं आभास निकट भविष्य में दिखाई नहीं देता। मखमली दस्ताने के नीचे फौलादी हाथ के दर्शन अभी तक तो हुए नहीं हैं।

हां इतना ज़रूर है कि जिस प्रकार अब पाकिस्तान और दिल्ली में स्थान-स्थान पर हथियारों के जखीरे पकड़े गये हैं, और आतंकवादी भी आये दिन जिस प्रकार पुलिस के हाथों पकड़े जा रहे हैं या मारे जा रहे हैं, उससे ऐसा लगता है कि इस बीच पुलिस का जो मनोबल शिथिल हो गया था उस में फिर तेज़ी आई है। सरकार ने जिस प्रकार बड़े पैमाने पर अफसरों के तबादले किये हैं, उससे भी राज्य सरकार की पूर्वापेक्षा अधिक सतर्कता की गंध मिलती है। बीच में जिस प्रकार केन्द्र ने आतंकवादियों से भी बातचीत के लिये रज़ामन्द होने का आभास दिया था और जसवन्त सिंह रोड़े तथा अन्य व्यक्तियों को जेलों से छोड़ा था, उससे सरकार की दुलमुल-नीति के साथ यह भनक भी मिलती थी कि शायद वह कुछ राजनीतिक पहल भी करना चाहती थी। परन्तु जिसने भी कभी इस प्रकार से बातचीत करने की दिशा में चलने की कुछ भी मंशा दिखाई, उसे उग्रवादियों ने और पंथिक कमेटी ने सर्वथा ठुकरा दिया। दर्शन सिंह रागी को जिस प्रकार धूमधड़ाके से मुख्यग्रंथी बनाया गया था और उन्होंने उग्रवादियों सहित सभी सिक्खों का विश्वास प्राप्त किया था, वह सब सुशील मुनि के साथ वार्तालाप के बाद ऐसा हवा हो गया कि रागी को स्वर्ण मन्दिर छोड़कर अपने गांव में जाकर बैठना पड़ा। आतंकवादी यह बखूबी जानते हैं कि सब सिक्खों को अपने बाड़े में बनाये रखने के लिये मुख्यग्रंथियों को और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी को अपना वचनबद्ध बनाना

होगा। अपनी बात मनवाने के लिये उनके हाथ में बन्दूक हैं और साथ में यह धमकी भी कि जो हमारे बताये रास्ते पर नहीं चलेगा उसकी खैर नहीं।

इस समय स्वर्ण मन्दिर पर पूरी तरह आतंकवादियों का कब्जा है। जसवन्त सिंह रोड़े को लाचार होकर बैशाखी के दिन 'सर्बत खालसा' स्वर्ण मन्दिर के बजाय दमदमी टकसाल में करना पड़ा। रोड़े अभी तक खालिस्तान का नाम नहीं लेते, वे केवल "पूर्ण आज़ादी" की बात कहते हैं। परन्तु पूर्ण आज़ादी से उनका क्या अभिप्राय है, उसको स्पष्ट नहीं करते। यदि उनका मतलब संविधान की सीमा में सिक्खों को सम्मानजनक दर्जा दिलवाना है, तो वे तुरन्त दिल्ली दरबार के एजेन्ट घोषित कर दिये जायेंगे और उनकी भी वही गति होगी जो दर्शन सिंह रागी की हुई है। और अगर यदि वे "पूर्ण आज़ादी" का मतलब खालिस्तान बतायेंगे, तो सरकार से बातचीत का रास्ता भी बन्द हो जायेगा। इसी लिये वे संभल-संभल कर चलना चाहते हैं। परन्तु पंथक कमेटी का रास्ता बिल्कुल साफ है।

आम जनता की यह धारणा है कि पंथिक कमेटी का निर्माण पाकिस्तान के इशारे पर ही हुआ है और गत वर्ष बैशाखी के दिन उसने जो खालिस्तान की घोषणा की थी, उसका मसविदा भी पाकिस्तान ने ही तैयार करके भेजा था। जीवन सिंह उमरानांगल तो खुल्लमखुला यह घोषणा करते आ रहे हैं कि पंथिक कमेटी की मार्फत न केवल स्वर्ण मन्दिर पर बल्कि सभी मुख्य गुरुद्वारों पर पाकिस्तान का नियन्त्रण है। इसीलिये उमरानांगल का सारा परिवार आतंकवादियों की हिट-लिस्ट में है। वे उनके पुत्र को मार चुके हैं, और उनके घर पर राकेटों से हमला कर चुके हैं। परन्तु उमरानांगल की हिम्मत की दाद देनी होगी कि वे जिस बात को सही समझते हैं, उसको कहने से बाज़ नहीं आते। यदि सिक्ख-सम्प्रदाय में ऐसे निर्भीक और सही बात कहने वाले कुछ और नेता होते, तो आज पंजाब की यह दुर्दशा न होती।

पाकिस्तान जो खेल खेल रहा है, वह कोई छोटा खेल नहीं है। बांग्लादेश के निर्माण से जो उसकी नाक नीची हुई है, उसका बदला वह किसी न किसी तरह लेना ही चाहता है और इसके लिये वह किसी भी हद तक जाने को तैयार है। भारत में अस्थिरता पैदा करने के इच्छुक और भी कई देश पाकिस्तान के इरादों में उसके साथी बन सकते हैं। सब प्रकार के आधुनिकतम हथियार पाकिस्तान इस समय अमरीका से प्राप्त कर रहा है और बड़े पैमाने पर आतंकवादियों के माध्यम से पंजाब में गृह-युद्ध का खेल प्रारम्भ कर दिया है। सीमावर्ती जिलों पर उसने पाक रेंजर्स भेज दिये हैं। वहां बंकर भी तैयार हो गये हैं और आतंकवादियों की सबसे अधिक बारदातें उन्हीं चार जिलों में हो रही हैं। आतंकवादी उन चारों जिलों को हिन्दुओं से और सब राष्ट्र-भक्त सिक्खों से शून्य कर देना चाहते हैं,

ताकि पाकिस्तान द्वारा किसी बड़ी कार्यवाही के समय वहां जनता में भारत का पक्ष लेने वाला कोई न बचे, और ऐसा भी कोई व्यक्ति न बचे जो पाकिस्तानी गतिविधियों की सूचना भारतीय सुरक्षाबल या भारतीय सेना तक पहुंचाने की हिम्मत रखता हो। इन चारों ज़िलों को भारत से काटकर खालिस्तान के रूप में उनको अलग प्रदेश के बनाने में शायद उसे कोई मुश्किल नज़र नहीं आती। जबसे खालिस्तानियों ने पाकिस्तान की सरकार को यह आश्वासन दे दिया है कि 'हम जिस खालिस्तान की मांग कर रहे हैं, उसमें पाकिस्तान का कोई हिस्सा शामिल नहीं होगा', तब से पाकिस्तान पूरी तरह निश्चिन्त होकर आतंकवादियों की सहायता करने में जुट गया है। अब उसकी ओर से आतंकवादियों को चीनी राइफ़्लें, राकेट और राकेट-लांचर भी सप्लाई किये जा रहे हैं। इसका सीधा मतलब क्या होता है, यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है। इसी बीच जबलपुर के शस्त्रागार में जिस तरह आग लगी है और इस्लामाबाद के शस्त्रागार में जिस तरह भयंकर विस्फोट हुआ है, इसमें एक हजार से अधिक लोगों के मरने की आशंका है, उससे ही स्थिति की विषमता का आभास होता है।

पंजाब के राज्यपाल ने कहा है कि इस समय राज्य में नेताओं, तस्करों और आतंकवादियों का जो प्रच्छन्न गठबन्धन है, उसको तोड़े बिना पंजाब की स्थिति नहीं सुधर सकती। परन्तु उन आतंकवादियों को क्या कहें जिनके पास न गांठ की अक्ल है, न गांठ का पैसा है, न गांठ के हथियार हैं और न गांठ की हिम्मत है। वे तो पाकिस्तान के इशारे पर नाच रहे हैं। ये सीधे हत्यारे हैं। इनका किसी दीन-ईमान से कोई वास्ता नहीं। इनको हत्या करने में आनन्द आता है। ये कायर और बुज़दिल हैं और पाकिस्तान के पंजे पर बैठे बाज की तरह ये स्त्रियों बच्चों, बूढ़ों और हिन्दू-सिख संभ्रा को निरीह पक्षियों की तरह मार रहे हैं। इनके साथ दया-माया कैसी है? इनको जो किसी प्रकार का प्रश्रय देते हैं, वे भी उतने ही बड़े अपराधी हैं जितने कि ये हैं। भारत की राष्ट्रीय अखण्डता के लिये "पराये पाणि पै बैठे इन बाजों" को सही सबक सिखाने के लिय सारे राष्ट्र को संकल्प का परिचय देना होगा।

१ मई १९८८



"महाशय कृष्ण ने इन्हें नवीन शैली का वक्ता और आर्यसमाज की नई उपलब्धि बताया था। उनकी इस शैली के कारण ही चारों ओर से उनकी मांग रहा करती थी।"..."कभी किसी का अपकार न करना और सब को मित्र की दृष्टि से देखना पण्डित जी का स्वभाव है।"

-अशोक कौशिक

पत्रकार, ७ एफ, कमला नगर दिल्ली-७

सुभाषित

आरम्भपूर्वी क्षयिणी क्रमेण
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्ध-परार्ध-भिन्ना
छायेव मैत्री खल-सज्जनानाम् ।

-भर्तृहरि, 'नीतिशतक'

दुष्ट और सज्जन पुरुषों की मैत्री का है भिन्न प्रकार ।
प्रातः अरु सायं छाया के सम है दोनों का व्यवहार ॥
पहले तो होती अति भारी, फिर क्रम से पाती है नाश ।
किन्तु दूसरी लघु हो पहले, पीछे पाती विपुल विकास ॥

-गोपालदास गुप्त

बड़े भाई की दादागिरी

इतिहास और भूगोल ने भारत और नेपाल को अतीतकाल से इस प्रकार जुड़ा रखा है कि वे दोनों एक दूसरे को भाई-भाई समझते रहे हैं। परन्तु जिस तरह 'हिन्दी चीनी भाई-भाई' के नारे में ऐसी दरार पड़ गई कि अब इस प्रकार का नारा किसी के मुंह से कभी सुनाई देने की गुंजाइश नहीं रही, कुछ वैसी ही स्थिति नेपाल के साथ भी होती दिखाई दे रही है। नेपाल स्पष्ट रूप से अन्तर्राष्ट्रीय मंचों तक यह शिकायत करने से बाज़ नहीं आया कि भारत ने नेपाल की आर्थिक घेराबन्दी कर रखी है और वह अपने पड़ोसी देशों के साथ 'दादागिरी' से पेश आ रहा है। बांग्लादेश का उदय, सिक्किम का विलय, श्री लंका और मालदीव में भारतीय सेना का भेजना उक्त आरोप की पुष्टि में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

प्राचीन काल से भारत और नेपाल सांस्कृतिक दृष्टि से अलग इकाइयां नहीं रही हैं। अनेक भारतीय विद्वान् नेपाली मूल के रहे हैं। नेपाल कांग्रेस के कितने ही नेता भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में भारतीय नेताओं के साथ जेलों में बन्द रहे हैं। मगध साम्राज्य का प्रसिद्ध लिच्छवी वंश मूल रूप से नेपाली राजवंश ही था। धार्मिक विकास-यात्रा में नेपाल और भारत सदा साथ-साथ चलते रहे हैं। नेपाली जनकनन्दिनी सीता को नेपाल की कन्या मानते हैं और लुम्बिनी वन में जन्मे गौतम बुद्ध को भी वे नेपाल के साथ ही जोड़ते हैं। दोनों देशों के लोग हिन्दुत्व की जिस

डोरी से बंधे हैं, वैसा उदाहरण भी अन्यत्र दुर्लभ है। संसार में एकमात्र घोषित हिन्दू देश कोई है, तो नेपाल ही है। भारत के लोग उसे अपने से बढ़कर हिन्दू मानते रहे हैं। हिन्दुत्व के प्रति प्राचीन काल की सी निष्ठा आज भी वहां विद्यमान है। आज भी यहां ब्राह्मण, गौ और नारी अवध्य हैं। मध्य-युग में हिन्दू धर्म की जैसी स्थिति रही होगी, वह अब भी नेपाल में विद्यमान है। वैष्णव, शैव और बौद्ध सम्प्रदायों का जैसा समन्वय वहां हुआ है, वह भी हिन्दू धर्म की सहिष्णुता और सर्व-धर्म-समभाव का उत्तम उदाहरण है। पर इस समभाव में ईसाईमत और इस्लाम का कोई स्थान नहीं है। नेपाल में धर्मान्तरण पर प्रतिबन्ध है। अनेक भारतवासी हिन्दू-राज्य की कल्पना करते हुए कभी-कभी नेपाल-नरेश को भारत का भावी हिन्दू-सम्राट् चिंतित करने में भी संकोच नहीं करते। इस एकरसता का ही यह परिणाम है कि आजीविका, मेहनत-मजदूरी और रोजगारी के लिए दोनों देशों के निवासियों को एक दूसरे देश में जीवन-यापन में कोई परायापन अनुभव नहीं हुआ। इसी का यह परिणाम भी है कि यदि ६० लाख भारतीय नेपाल के विभिन्न प्रदेशों में बसे हैं, तो लगभग एक करोड़ नेपाली भारत में रह रहे हैं। गोरखों की स्वामिभक्ति आज भी सर्वत्र प्रसिद्ध है, और बड़े से बड़े संस्थानों में उनको पूरे विश्वास के साथ चौकीदारी का काम सौंपा जाता है।

सत्य तो यह है कि नेपाल एक स्वायत्त राज्य तो था, पर वह भारतीय रियासतों की तरह ही था, कभी अलग राष्ट्र नहीं था। उसे राष्ट्र बनने की गरिमा और मार्ग तो भारत ने ही सुझाया था और जैसे हाथ पकड़ कर उसे अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर एक पृथक् राष्ट्र के रूप में स्थापित किया था। भारत ने स्वयं स्वतंत्र होने के पश्चात् जिस प्रकार लोकतंत्र का मार्ग चुना था, उसी तरह उसकी इच्छा तो थी कि वहां भी लोकतंत्र आवे, परन्तु वहां के राजतन्त्र को उसने मान्यता दी और नेपाल के साथ अलग से संधि करके उसे वैसी विशेष रियायतें भी दीं जो कोई देश किसी पृथक् देश को नहीं देता। भारत ने नेपाल को आधुनिक राष्ट्र बनाने में अपनी ओर से पहल की। जब त्रिभुवन-नरेश राणाओं के चंगुल से निकल कर भारत की शरण में आए थे, तो भारत शरणागत के संकट का लाभ उठाकर उसे अपनी शर्तों में बांध सकता था। पर भारत ने वैसा नहीं किया। नेपाल के आर्थिक विकास में भारत ने सहायता की। उसे 'त्रिभुवन-राजमार्ग' बनाकर दिया हवाई अड्डा बनाकर दिया। सन् ६० से पहले उसके पास विदेशी मुद्रा का सर्वथा अभाव था। भारत ने अपने रिजर्व बैंक में उसकी विदेशी मुद्रा को स्थापित किया। बिना चुंगी चुकाए कलकत्ता के बन्दरगाह से विदेशों से सामान मंगाने की छूट दी। इन आयातित वस्तुओं को पुनः तस्करी के माध्यम से भारतीयों तक पहुंचाये जाने को नज़रन्दाज़ किया। निस्सन्देह आयातित वस्तुओं के प्रति चंद भारतीयों का अन्धमोह भी इसके पीछे

कारण था। पर नेपाल सरकार के पूरे समर्थन से यह तस्करी चलती रही और वह इस आयातित सामग्री से दोहरा लाभ उठाता रहा, पर भारत सरकार ने कभी उसे पूरी तरह सख्ती से रोकने का प्रयत्न नहीं किया।

भारत और चीन दोनों के साथ मित्रता बनाए रखने का नेपाल को पूरा अधिकार है। पर धीरे-धीरे नेपाल का झुकाव चीन की तरफ बढ़ता गया तो लगता है कि वह किसी सिद्धान्त-प्रेम के कारण नहीं, बल्कि भारत को चिढ़ाने के लिए ही अधिक था। अन्यथा नेपाल इतना अन्धा तो नहीं हो सकता कि उसे चीन द्वारा तिब्बत को हड़पने का उदाहरण दिखाई न दे। चीन यह चाहे कि नेपाल भारत से खिंचा रहे, यह स्वाभाविक है। पर धीरे-धीरे नेपाल ने कुछ ऐसे काम भी किए जो भारत के व्यापक सीमाई हितों के विरुद्ध थे। चीन-भारत संघर्ष के समय नेपाल ने न केवल रुखाई दिखाई, बल्कि मैकमोहन रेखा की वैधता को स्वीकार करने में भी चुप्पी साध ली, जबकि वह उसकी ही सहमति से तैयार हुई थी। उसने चीन को भारत की सीमा तक सड़क बनाने की छूट दी। उसने चीन के इशारे पर सीमा-चौकियों से भारतीय सैनिकों को हटाया, और नेपाली सेना को प्रशिक्षण देने वाले भारतीय विशेषज्ञों को भी हटा दिया। नेपाल ने यह भी याद नहीं रखा कि कभी चीन ने अरुणाचल के साथ सिक्किम, भूटान और नेपाल को भी चीन के पुराने मंचू-साम्राज्य के अंग के रूप में अपने नक्शे में दिखाया था।

इसके अलावा नेपाल ने चीन से विमानवेधी तोपें तथा अन्य शस्त्रास्त्र लेना शुरू कर दिया। विमानवेधी तोपें किसलिए? नेपाल सरकार का कहना था कि आतंकवादियों से निपटने के लिए। नेपाल में ऐसे कौन से आतंकवादी हैं जो विमानों से आतंकवादी कारवाइयां करते हों, यह संसार में कोई नहीं जानता। यह ठीक वैसा ही लचर बहाना है जैसा कि एफ-१६ विमान अमरीका से प्राप्त करने के लिए पाकिस्तान कहता है कि अफगानिस्तान से किसी भारी संकट के निवारण के लिए उसे वे विमान चाहिए। इसके अतिरिक्त नेपाल ने भारत के साथ जो संधि की थी, उसकी अवधि समाप्त हो जाने पर उसके पुनर्नवीकरण के लिए अपनी ओर से उसने कोई रुचि नहीं दिखाई। उसने समझा कि बिना भारत के सहयोग के मैं अपनी गाड़ी आराम से चला लूंगा। सारे संसार में उसने यह गलत प्रचार प्रारम्भ कर दिया कि भारत ने नेपाल की आर्थिक घेराबन्दी प्रारम्भ कर दी है। भारत ने उस आरोप के खण्डन के लिए कोई जवाबी हमला नहीं किया, शायद उसने इस आरोप को इस योग्य ही न समझा हो और यह भी माना हो कि सत्य स्वयं संसार के सामने प्रकट हो ही जाएगा।

नेपाल ने सोचा था कि अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भविष्य में वह भारत पर निर्भर नहीं रहेगा। उसे चीन, बांग्लादेश और पाकिस्तान से सहायता

मिलने की और खासतौर से अमरीका से पूरा संरक्षण मिलने की बहुत आशा थी। पर किसी देश ने उसे घास नहीं डाली। चीन, पाकिस्तान और बांग्लादेश स्वयं अपनी समस्याओं में इतने उलझे हुए हैं कि उसकी कोई खास सहायता नहीं कर सकते। चीन ने पहले तो भारत से दूर रखने के लिए नेपाल को खूब पटाया, अपना सामान कौड़ियों के मोल भेजा, पर अब उसने भी हाथ खींच लिया। फिर अब जो छात्र-आन्दोलन चीन में चल रहा है, उससे नेपाल के भी कान खड़े हो गए हैं कि यदि लोकतन्त्र की मांग करने वाला ऐसा ही छात्र-आन्दोलन नेपाल में भी चल पड़ा तो राजतन्त्र की क्या गति होगी? क्या 'पांच-सरकार' का मुलम्मा पंचतत्त्व को प्राप्त नहीं हो जाएगा? कोई अन्य बड़ा देश भारत को नाराज करके नेपाल की सहायता करने को तत्पर नहीं दिखाई दिया। नेपाल भारत से हर वर्ष लगभग चार अरब रु० का सामान मंगाता है। इसके बिना वहां के नागरिकों का दैनिक जीवन भी संभव नहीं होगा। नेपाल के पास अपना कोई उद्योग-धन्धा नहीं है, लकड़ी को छोड़कर और कोई पैदावार नहीं है, जिसका निर्यात कर सके। चारों ओर पहाड़ों से घिरा है। यदि भारत उससे किनारा कर ले, नेपाल के संकटों की सीमा न रहे।

अब नेपाल का मोहभंग हुआ है। उसने देख लिया है कि कोई उसकी सहायता के लिए आगे आने को तैयार नहीं है, इसलिए अब उसने स्वयं भारत के साथ मंत्रीस्तर पर बात करने का प्रस्ताव रखा है। परन्तु भारत जानता है कि वहां मंत्री भी शक्तिहीन हैं। असली शक्ति तो नरेश के पास गिरवी रखी है।

फिर भी हम भारत सरकार से आग्रह करेंगे कि इस अवसर पर इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न न बनाये और अपनी ओर से कुछ ऐसी पहल करे कि दोनों देशों में पुनः सौहार्द स्थापित हो सके, क्योंकि दोनों देशों का भला इसी में है। दोनों देशों की जनता की भी यही इच्छा है।

१८ जून १९८६



“अन्य गुणों के साथ-साथ श्री वेदालंकार जी में निर्भोक्ता, सौजन्य तथा शिष्टता का गुण भी बहुत ऊंचे स्तर का है। किसी भाव को व्यक्त करने, किसी बात का वर्णन करने की एक बड़ी अद्भुत शक्ति आपको प्रभु ने दी है। महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों पर इनकी अगाध श्रद्धा है। वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में ही अपना जीवन लगाया है।”

-स्वामी सर्वानन्द सरस्वती

अध्यक्ष, यति-मण्डल

दयानन्द मठ, दीना नगर

सुभाषित

सर्वानर्थः कुले यत्र जायते पापपुरुषः।
अकीर्तिं जनयत्येव कीर्तिमन्तर्दधाति च॥

महाभारत १०५/६

जिस कुल में (या देश में) पापी पुरुष जन्म लेता है, उस कुल या देश के लिए वह सम्पूर्ण अनर्थों का कारण बन जाता है। पापात्मा मनुष्य कुल या देश को कलंकित करता है और उसके सुयश को बड़ा लगता है।

‘लंका निशिचर-निकर-निवासा’ ही नहीं

हनुमान जी जब समुद्र को पारकर सीता की खोज में लंका गए थे, तब विभीषण के घर को देखकर उनके मुंह से यही निकला था—

लंका निशिचर निकर निवासा।

इहां कहां सज्जन कर बासा।।

आधुनिक श्रीलंका राक्षस—राज रावण वाली लंका तो नहीं है। इतिहासकारों में भी इस विषय पर काफ़ी मतभेद है कि वह रामायणकालीन लंका कहां थी। परन्तु भारतीय जनमानस में अभी तक यही विश्वास बैठा हुआ है कि आधुनिक श्रीलंका ही रामायणकालीन लंका रही होगी। रामेश्वर के तटवर्ती समुद्र में कई मील तक शिलाओं की जो पंक्तिबद्ध श्रृंखला चली गई है, उसको प्रकृति का चमत्कार कहा जा सकता है, परन्तु भक्तगण यही मानते हैं कि राम की सेना ने समुद्र पार कर लंका पहुंचने के लिए सेतुबन्ध तैयार किया था। ये विशाल पंक्तिबद्ध चट्टानें नल और नील द्वारा बनाये गये उसी पाषाण—युग के अवशेष हैं। जब से श्रीलंका के राष्ट्रपति प्रेमदास (जिसे हमारी आकाशवाणी और दूरदर्शन के महामान्य लोग “प्रेमदासा” कहने से बाज नहीं आते) ने भारत को धमकी दी थी कि “यदि उसने २६ जुलाई तक अपनी सेना वापिस नहीं बुलाई तो वह इसे बैरकों में बंद कर देंगे,” तब से अनेक भारतवासियों के मन में तुलसीदास की अर्धाली वाली पहली पंक्ति बार—बार उभर रही होगी। परन्तु अब जब प्रेमदास ने अपनी धमकी वापिस ले ली है और शान्ति—सेना की वापसी शुरू हो गई है, तो पाठकों के मन में अर्धाली की

दूसरी पंक्ति भी उभर रही होगी। २६ जुलाई को अपनी ज़िद छोड़कर जहां श्री प्रेमदास ने अपनी सज्जनता का परिचय दिया है, वहां भारत सरकार ने भी अपने ६०० सैनिकों को उसी दिन वापिस बुलाकर बहुत समझदारी का परिचय दिया है।

श्रीलंका के राष्ट्रपति की ज़िद के कारण स्थिति विस्फोटक बनती जा रही थी और ये खबरें भी हवा में थीं कि भारत ने अपने युद्ध-पोत भेजकर श्रीलंका को चारों ओर से घेर लिया है, और वह किसी भी विषम स्थिति से निपटने के लिए तैयार है। तब सिंहली सेना के अधिकारियों ने ही भारत की सेना के सामने न टिक सकने की अपनी मजबूरी जताकर अपने राष्ट्रपति को ज़िद छोड़ने के लिए मनाया। इसीलिए ब्रिटेन के अखबारों ने इसे प्रेमदास की पराजय बताया है। परन्तु हम जय या पराजय की भाषा में बात नहीं करना चाहते। हम इस घटना को दोनों देशों की समझदारी के साथ जोड़ते हैं।

परन्तु प्रतिपक्ष का आरोप है कि भारत ने जल्दबाज़ी में भारत-श्रीलंका समझौता करके तत्कालीन राष्ट्रपति जयवर्धन (जिसे आकाशवाणी और दूरदर्शन वाले 'जयवर्धन' कहने में अपनी शान समझते हैं,) के कहने पर अपनी सेना भेजकर अच्छा नहीं किया। श्रीलंका के फटे में अपने पांव फंसा कर उसने कोई बुद्धिमानी का काम नहीं किया। क्योंकि जिस उद्देश्य से सेना भेजी गई थी वह आज तक पूरा नहीं हुआ। इसलिए उचित यही होता कि वर्तमान राष्ट्रपति के कहते ही शान्ति-सेना वापिस बुला ली जाती। अब भारत को नाक नीची करनी पड़ी है। परन्तु हम इस विचार से सहमत नहीं हैं।

भारत अभी तक पड़ोसी या दूरस्थ देशों में बसे भारतीय मूल के निवासियों की हमेशा उपेक्षा करता आया है। बर्मा, फ़िजी और गुयाना आदि में भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार किया गया और भारत सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया। तभी तो श्रीलंका और नेपाल जैसे छोटे-छोटे पड़ोसी देशों के भी पर निकलने लगे और वे भारतीयों की अवमानना करने की हिम्मत जुटा सके।

हिन्द-महासागर के माध्यम से होने वाली आक्रामक कार्यवाहियों को रोकने के लिए भारत की विशेष जिम्मेदारी है। अंग्रेजों ने भारत की पूर्वी सीमा की रक्षा के लिए सिंगापुर को अपना जबरदस्त नौसैनिक अड्डा बनाया था। ब्रिटिश साम्राज्य के अस्त हो जाने पर सिंगापुर का वह अड्डा भी नहीं रहा। यों भी आज़ाद भारत को अपनी चौकसी आप ही करनी थी, इसलिए समुद्रवर्ती अपने पड़ोसियों पर विशेष ध्यान देना उसके लिए आवश्यक था।

कभी वीर सावरकर ने कहा था कि समुद्री आक्रमण से रक्षा के लिए भारत को अण्डमान-निकोबार, श्रीलंका और मालदीव जैसे छोटे द्वीपों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। मालदीव में भारत सरकार ने जिस तेज़ी से कार्यवाही की वह उसी चौकसी

का परिणाम है। यही बात श्रीलंका के साथ भी है। भारत के आज़ाद होने के पश्चात् अमरीका और रूस जैसी महाशक्तियों ने अपने जंगी बेड़े हिन्द महासागर में भेजने शुरू कर दिये। अमरीका ने इसी लिए जियोगे गार्शिया (जिसे लोग गलती से 'डियेगो गार्शिया' बोलते हैं) जैसे छोटे से टापू पर अपना कम्प्यूटरीकृत नौसैनिक अड्डा तैयार किया है, जहां उसके आणविक अस्त्रों से लैस युद्धपोत सारे हिन्द महासागर पर चौकसी रखते हैं। कभी नेपोलियन बोनापार्ट ने भारत पर हमला करने की सुविधा के लिए ही डचों को पराजित कर मारीशस पर कब्जा किया था। इस खतरे को भांप कर ही अन्त में ब्रिटेन ने भारतीय सेना की सहायता से मारीशस से फ्रांसीसियों को भगाकर अपना आधिपत्य स्थापित किया। भारत के आज़ाद होने के साथ ब्रिटेन के अन्य उपनिवेश भी आज़ाद होने लगे, तो उसी श्रृंखला में मॉरीशस भी हो गया। तब अमरीका ने मॉरीशस का निकटवर्ती यह जियोगे गार्शिया टापू हिन्द महासागर की चौकसी के लिए ही ब्रिटेन से पट्टे पर ले लिया। तब से मारीशस इस पर अपना अधिकार जताने का प्रयत्न तो करता रहा, परन्तु महाशक्तियों के नक्काशखाने में इस छोटे से देश की तूती की आवाज कोई क्यों सुनता?

श्रीलंका के तमिलों की समस्या इतनी आसान नहीं है। सिंहली उग्रवाद ने जो अत्याचारपूर्ण रूप अपनाया है, तमिलों का अलगाववाद उसी का परिणाम है। ध्यान देने की बात यह है कि सिंहली और तमिल दोनों ही मूलतः भारतीय हैं। उनके पूर्वज भारत से ही जाकर वहां बसे हैं। तमिलों का कहना है कि सिंहलियों से भी पहले कई शताब्दियों से हम यहां आबाद हैं और हमारा यहां राज्य रहा है। परन्तु सिंहलियों के कथनानुसार तमिलों को पराजित करके उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया। सिंहली बौद्ध हैं और वे इसी रूप में अपनी अलग पहचान कायम करना चाहते हैं। बौद्ध होने पर भी जिस प्रकार का हिंसात्मक उग्रवाद सिंहलियों ने अपनाया है, उसी का मुकाबला करने के लिए तमिल उग्रवाद पनपा है। जब तक अंग्रेज़ रहे, तब तक दोनों उग्रवाद नहीं उभर पाए। परन्तु अंग्रेज़ों के जाने के बाद सिंहलियों के इस उग्रवाद ने राष्ट्रवाद का 'जामा पहन कर अपने संविधान के द्वारा तमिलों को समस्त लोकतन्त्रीय अधिकारों से वंचित कर दिया।

तमिल भी दो तरह के हैं, एक वे जो वहां सदियों से रहते आये हैं; और दूसरे वे जो अंग्रेज़ों के जमाने में वहां के चायबागान में काम करने के लिए भारत से वैसे ही लाए गए थे जैसे कि मॉरीशस आदि में ले जाए गए थे। सिंहली राष्ट्रवाद इन दोनों प्रकारों के तमिलों को समस्त प्रकार के नागरिकता के अधिकारों से वंचित करके वापस भारत भेज देना चाहता है, जबकि तमिलों का कहना है कि श्रीलंका हमारा भी वैसा ही देश है जैसा कि सिंहली बौद्धों का। श्री लाल बहादुर शास्त्री के काल में श्रीलंका ने चार लाख तमिलों को अपनी

नागरिकता देने का वचन दिया था परन्तु उस पर अमल नहीं किया। इसके अलावा उनको मतदान के अधिकार से भी वंचित कर दिया और संविधान में यह भी व्यवस्था कर दी कि संविधान की धाराओं का परिवर्तन जनमत से ही हो सकता है। श्रीलंका में क्योंकि सिंहलियों का बहुमत है, इसलिए जनमत तमिलों के पक्ष में नहीं हो सकता। श्रीलंका में असल में तमिल उग्रवाद सिंहलियों के उग्रवाद की प्रतिक्रिया—मात्र है। जब तमिल मुक्ति-चीतों का आतंक इतना बढ़ गया कि श्रीलंका की सेना उसका दमन करने में असमर्थ हो गई, तभी जयवर्द्धन ने भारतीय सेना को बुलाया था।

भारत सरकार ने तमिलों के अलगाववाद का कभी समर्थन नहीं किया, लेकिन वे लोकतन्त्रीय अधिकारों से भी वंचित हो जाएं, यह उसे पसन्द नहीं था क्योंकि इसकी अन्तिम परिणति वही होती जो पूर्वी पाकिस्तान से लाखों शरणार्थियों के भारत पहुंचने पर हो गई थी। वह भी भारत के लिए बहुत बड़ा सिरदर्द हो जाता। इसलिए भारत का अपनी सेना भेजना ठीक था, और अब उसका यह आग्रह भी ठीक है कि जब तक तमिलों को, जिनका उत्तरी और पूर्वी प्रान्त में पूर्ण बहुमत है, लोकतन्त्रीय अधिकार प्राप्त नहीं होते, तब तक वह सेना वापस नहीं जा सकती, क्योंकि भारत-श्रीलंका समझौते में यही व्यवस्था की गई थी। प्रेमदास ने भारतीय शान्ति-सेना की वापसी के लिए मुक्ति चीतों को भी पटाय़ा है, परन्तु इन मुक्ति चीतों की विश्वनीयता भी संदिग्ध है। असली खतरा यह है कि शान्ति-सेना के हटते ही वहां सिंहली उग्रवाद और तमिल उग्रवाद दोनों आपस में टकराएंगे। अर्थात् जिस गृह-युद्ध से बचने के लिए जयवर्द्धन ने भारतीय सेना को बुलाया था, उसी गृहयुद्ध में श्रीलंका कहीं फिर फंस जाए, यही खतरा है। उस गृहयुद्ध में कोई विदेशी शक्ति भी दखल देना शुरू कर दे तो भारत उस खतरे की उपेक्षा नहीं कर सकता।

६ अगस्त १९८६



“भारत को उन्होंने घूम-घूम कर देखा है, उसकी आत्मा को पहचाना है। जब वे स्वयं अपनी यात्राओं का वर्णन करते हैं, तब तो लगता है कि हम भी ‘चक्रचरण’ बनकर उनके साथ उस यात्रा में सम्मिलित हो गए हैं और अपने देश को, देशवासियों को जानने के साथ-साथ वहां के जीवन-स्पन्दन का भी साक्षात् अनुभव कर रहे हैं।”

—‘आलोक’ डॉ० वेदव्रत

रीडर, संस्कृत, दिल्ली विश्वविद्यालय

सुभाषित

वाग्दुष्टात् तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसितः।

साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः॥

साहसे वर्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः।

स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति॥

मनुस्मृति ८/३४५, ३४६

जो राष्ट्र के लिए अपमानजनक शब्द बोलता है, शस्त्रास्त्रों की या नशीले पदार्थों की तस्करी करता है और निर्दोषों की हिंसा करता है, ऐसे दुस्साहसी आतंकवादी को सबसे बड़ा पापी समझना चाहिए। जो राजा आतंकवाद में लिप्त ऐसे लोगों को सहन करता है वह शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होता है और प्रजा में अपने लिए द्वेष तथा घृणा पैदा करता है।

पाकिस्तान के दो खतरनाक प्रक्षेपास्त्र

पाकिस्तान के पास इस समय दो ऐसे खतरनाक प्रक्षेपास्त्र हैं, जो बहुत दूर तक मार कर सकते हैं और भारत के लिए अत्यन्त अनिष्टकारी सिद्ध हो सकते हैं। भारत में नई सरकार के पदारूढ़ होने पर पाकिस्तान ने इन्हीं दोनों प्रक्षेपास्त्रों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। इन दोनों प्रक्षेपास्त्रों में से एक का नाम है—कश्मीर और दूसरे का नाम है—पंजाब। पाकिस्तान जानता है कि सैन्य—शक्ति के बल पर भारत से पार पाना उसके लिए आसान नहीं है। हालांकि अमरीका द्वारा आधुनिकतम शस्त्रास्त्र दिये जाने से इस समय पाकिस्तान की सेना भी अपने शिखर पर है, पर वह उक्त दोनों प्रक्षेपास्त्रों के माध्यम से ही, सीमा के दूसरी ओर बैठा, भारत को खण्डित करने की सोच रहा है। इस समय कश्मीर और पंजाब दोनों ज्वालामुखी बने हुए हैं और उनका गरम—गरम लावा दोनों राज्यों में जनता को सुलगा रहा है। अफगानिस्तान से रूसी सेना हट जाने के बाद, और मुजाहिदीनों के नजीबुल्ला सरकार को गिराने के मंसूबे विफल हो जाने के बाद अब पाकिस्तान का लक्ष्य केवल भारत रह गया है। इस बार के गणराज्य—दिवस पर देश की जनता के सामने पाकिस्तान के उक्त दो प्रक्षेपास्त्रों के निवारण के कारगर उपायों पर विचार करना ही सबसे बड़ी समस्या है।

इस विषय में आर्यसमाज का दृष्टिकोण क्या है, वह सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री स्वामी आनन्दबोध सरस्वती द्वारा प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह को लिखे पत्र से विदित होता है। उन्होंने अपने पत्र में लिखा है :—

“आप जानते ही हैं कि ५० वर्ष पूर्व हैदराबाद में निज़ाम के अत्याचारों के विरुद्ध आर्य समाज ने १९३६ में सत्याग्रह किया था। गत २६, ३० और ३१ दिसम्बर १९८६ को हैदराबाद में उसी आर्य सत्याग्रह की याद में स्वर्ण जयन्ती समारोह आयोजित किया गया था। इस समारोह के अन्तर्गत पंजाब और कश्मीर की स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करते हुए समस्त आर्य जनता ने यह प्रस्ताव पारित किया कि सरकार से इन दोनों राज्यों में शान्ति कायम करने के लिए अनुरोध किया जाए और जब तक स्थिति नियंत्रण में न आ जाए, इन दोनों राज्यों में विधान-सभा के चुनाव न कराए जाएं।”

“आप यह भी जानते हैं कि वर्तमान लोकसभा में मान-गुट के ६ सदस्य चुने गये हैं। यदि उग्रवाद की सहायता से ये लोग चुनाव न जीतते तो इनमें से कुछ को फांसी की सज़ा और कुछ को उम्र-कैद की सज़ा मिलनी निश्चित थी, परन्तु उन्हें जेलों से रिहा किया गया और सभी मुकदमों में भी वापस ले लिए गये। इससे उग्रवादियों का उत्साह बढ़ा और सारी सुरक्षा-व्यवस्था के मनोबल को ठेस पहुंची। आज आतंकवादी अपने आपको पंजाब का स्वामी मानते हैं। जिस तरह वे आदेश जारी करते हैं, उस तरह तो राज्यपाल भी नहीं करते। अधिकारियों को धमकियां दी जा रही हैं, व्यापारियों और डाक्टरों से लाखों रुपए वसूल किए जा रहे हैं, पुलिस अफसरों की सूचियां प्रकाशित की जा रही हैं, जिन्हें वे दण्डनीय मानते हैं। सिमरनजीत सिंह मान कानून के अनुसार काम करने वाले बड़े-बड़े अफसरों को हिटलर बता रहे हैं, और उनके विरुद्ध उसी तरह कार्रवाई करने की धमकी दे रहे हैं, जैसे दूसरे महायुद्ध के बाद नाज़ियों के खिलाफ की गई थी। पुलिस-थानों पर हमले हो रहे हैं। अर्द्धसैनिक बलों को निशाना बनाकर मौत के घाट उतारा जा रहा है। एक-एक सप्ताह में कई-कई लाख की फिरौतियां वसूल की जा रही हैं।”

“अपने परिवार व अपनी जान की परवाह किए बिना देश के वीर पुलिस अफसर आतंकवादियों से टक्कर लेते हैं, सरकार उन्हीं में से कुछ उग्रवादी नेताओं को अकारण रिहा कर देती है और उल्टे पुलिस अधिकारियों से जवाब-तलबी होती है। पिछले एक महीने में लगभग ५० सुरक्षा-सैनिक आतंकवादियों के साथ मुठभेड़ में मारे गये हैं। क्या इन मुठभेड़ों को भी झूठी मुठभेड़ का नाम दिया जा सकता है?”

“ऐसी परिस्थितियों में यदि पंजाब में विधान-सभा चुनाव करवा दिये गये तो सम्भावना यही है कि १५७ में से लगभग ८० सीटें मान-गुट के उन लोगों को ही मिलेंगी जिन्होंने देश की बड़ी से बड़ी हस्ती के खून से अपनी प्यास बुझाई थी। इन लोगों की सरकार बन गई तो पंजाब में वह क्या गुल खिलाएगी? ऐसी सरकार सत्ता सम्भालते ही विधान-सभा में पहला प्रस्ताव खालिस्तान का पास कराएगी, जिससे आपके लिए एक नया वैधानिक संकट पैदा हो जायेगा।”

“अब कश्मीर की हालत पंजाब से भी ज्यादा खतरनाक है। पिछले एक महीने से कश्मीर में ऐसा एक भी दिन नहीं निकला जब घरों, दुकानों, स्कूलों को जलाया न गया हो, मन्दिरों को तबाह न किया गया हो और बैंकों पर बम न फेंके गये हों। पथराव, आगजनी, लूटपाट तो नित्य की घटनाएं बन चुकी हैं। राष्ट्रीय ध्वजा जलाना और पाकिस्तानी झण्डे फहराना तो सामान्य बात हो गई है। सैकड़ों परिवार कश्मीर से पलायन कर चुके हैं और देश के अन्य हिस्सों में शरणार्थी बनकर पड़े हैं। ऐसी अवस्था में राज्य-सरकार को बर्खास्त करके राष्ट्रपति शासन ही एक मात्र उपाय है।”

“ऐसा ही एक झापन मैंने पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी को प्रस्तुत किया था, जिसमें उन्हें निजी सलाह दी गई थी कि यदि देश से आतंकवाद का निशान पूरी तरह मिटाना हो तो पंजाब और कश्मीर को १० वर्ष के लिए सेना के हवाले करके पूरी सीमा पर कड़ी सुरक्षा-पट्टी बनाई जाए, जहां पर सेवानिवृत्त सैनिकों को बसाकर उन्हें मताधिकार दिये जाएं। केवल इसी एक उपाय से आतंकवाद को और आतंकवादियों को पाकिस्तान से मिलने वाली सहायता पूरी तरह समाप्त की जा सकती है।”

“मेरे देशहित में दिये गये इन सुझावों पर आप गंभीरता-पूर्वक विचार करें और सख्ती के साथ स्थिति पर नियंत्रण करने के लिए कदम उठावें। ईश्वर आपको पूर्ण शक्ति प्रदान करें।”

२८ जनवरी १९६०



“क्षितीश जी वेद-विद्या में महर्षि दयानन्द व आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रति गूढ़ आस्था व निष्ठा के साथ समर्पित व्यक्ति हैं। वह भारत के उन सपूतों में हैं, जो देश की एकता, अखण्डता व स्वतन्त्रता के लिए सब प्रकार के बलिदान के लिए तैयार रहते हैं।”

-स्वामी आनन्द बोध सरस्वती
प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली

सुभाषित

अकरुणत्वमकारण-विग्रहः
परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजन-बन्धुजनेष्वसहिष्णुता
प्रकृति-सिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ॥

— भर्तृहरि (नीतिशतक, श्लोक ४२)

दया न करते कभी किसी पर और अकारण करते द्वेष।
परधन और पराई नारी की रखते हैं चाह विशेष॥
सज्जन और स्वबन्धु-जनों से करते ईर्ष्या का व्यवहार।
हैं स्वभाव से सिद्ध दुरात्मा-पुरुषों के ये लक्षण चार॥

—गोपालदास गुप्त

एक नया अन्तर्राष्ट्रीय षड्यंत्र

जब से सोवियत संघ का विघटन हुआ है, तब से संसार के सभी देशों के राजनीतिक समीकरण बदल रहे हैं। अब तक सोवियत संघ का जितना विघटन हुआ है, भविष्य में उससे भी अधिक होने की सम्भावना है। उसी सम्भावना को लक्ष्य में रखकर सभी देश अपनी-अपनी भावी राजनीति का निर्धारण कर रहे हैं। जो कुछ सोवियत संघ में हुआ, बहुत कुछ भारत में भी हुआ। वहाँ यदि कम्युनिज़्म का तम्बू उखड़ गया, तो भारत के कम्युनिस्ट भी अनाथ हो गये। उसी का असर तथाकथित समाजवादी दलों पर भी स्पष्ट दिखाई दे रहा है। वास्तव में ये समाजवादी दल और कुछ नहीं, केवल कुछ विद्रोही कांग्रेसी ही थे जो सत्ता की ललक में कांग्रेस से अलग होकर अलग तम्बू खड़ा करने में लगे थे। ये समाजवादी कांग्रेस में नहीं पचाये जा सके तो जनता दल और समाजवादी दल में भी नहीं पचाये जा सके। अब ज्यों-ज्यों जनता दल बिखरने लगा है, त्यों-त्यों अधिकांश समाजवादी पुनः कांग्रेस में आने की बाट जोह रहे हैं। स्वयं प्रधानमंत्री भी यह निमंत्रण दे चुके हैं कि जो पुराने कांग्रेसी हैं उनके लिए कांग्रेस के द्वार खुले हैं।

भारतीय राजनीतिक दलों की इस स्वार्थ-परायण अवसरवादिता की होड़ में हमारा उस ओर ध्यान नहीं है कि जो एक नया अन्तर्राष्ट्रीय षड्यंत्र भारत के विरोध में पनप रहा है। कुर्सी-दौड़ में किसी को होश ही नहीं है। सबको

अपनी-अपनी पड़ी है। इस दृष्टि से पाकिस्तान अधिक जागरूक है, और उसने सक्रिय रूप से उस अन्तर्राष्ट्रीय षड्यंत्र में हिस्सेदारी ही नहीं की, बल्कि उस षड्यंत्र के निर्माण में प्रमुख घटक वही है। वह अन्तर्राष्ट्रीय षड्यंत्र क्या है?

इससे पहले पाकिस्तान के राष्ट्रपति ज़िया-उल-हक ने वह स्वप्न देखा था, और उन्होंने पाकिस्तान, अफगानिस्तान और ईरान को मिलाकर एक इस्लामी महासंघ बनाना चाहा था। तब साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए अमरीका भी इस प्रकार की योजना को कारगर बनाने में सहायक था। इसीलिए अफगानिस्तान की सरकार को उलटने के लिए, और मुजाहिदों को तदर्थ सन्नद्ध करने के लिए वह अमरीका पाकिस्तान को शस्त्रास्त्रों की खेप पर खेप भेजता रहा। पर जब सोवियत संघ को अपने महादेश के विघटन के आसार नज़र आने लगे तो उसने अकस्मात् अपनी सारी सेना अफगानिस्तान से हटा ली। फिर तो रूस की ऐसी दुर्दशा हुई कि न केवल उसका आन्तरिक विघटन यथार्थ रूप धारण करने लगा, प्रत्युत उसे भी अमरीका के सामने आर्थिक सहायता के लिए हाथ फैलाना पड़ा।

इधर रूस का नक्शा बदला, उधर अमरीका को साम्यवादी भालू के आतंक से मुक्ति मिली तो उसने भी मुजाहिदीन की सहायता बन्द कर दी। पाकिस्तान केवल अपने बल पर अफगानिस्तान का कुछ बिगाड़ नहीं सकता था। इसलिए अफगानिस्तान की लड़ाई केवल कबायलियों की आपसी लड़ाई बनकर रह गई। जिया का विमान दुर्घटना में प्राणान्त हुआ तो उनके उस महासंघ के स्वप्न का भी जनाज़ा निकल गया। पर पाकिस्तान की मनोवृत्ति नहीं बदली। उसका जन्म ही भारत के प्रति शत्रुता की भावना से हुआ और वही भावना उसके लालन-पालन में सहायक बनी। वह उसका जन्मसिद्ध स्थायी भाव है, संचारी भाव नहीं। यदि पाकिस्तानी जनता का समझदार बुद्धिजीवी वर्ग इस स्थायी भाव को बदलना भी चाहे तो सैन्य वर्चस्व की छाया में चलती पाकिस्तानी सरकार उसे बदलने नहीं देगी; क्योंकि बिना सेना के सहयोग के पाक-सरकार सर्वथा अकृतकार्य है।

इसलिए अब पाकिस्तान ने जिया-कालीन उस महासंघ की कल्पना को तो छोड़ दिया, पर जिया-प्रेरित इस स्वप्न के दूसरे भाग को वह नहीं छोड़ सका। स्वप्न का वह दूसरा भाग है—किसी न किसी तरह कश्मीर को हड़पना। जब से बांग्लादेश पाकिस्तान से टूट कर अलग हुआ है और पाक सेना का अभूतपूर्व मान-मर्दन हुआ है, तब से सेना उस अपमान का बदला लेने के लिए खार-खाए बैठी है। उसकी आंखें कुलबुला रही हैं। वह यह भी जानती है कि केवल अपने भरोसे वह भारत से पार नहीं पा सकती। पहले अमरीका की सहायता के माध्यम से सेना उस लक्ष्य को पूर्ण करना चाहती थी, पर अब जब अमरीका ने आंखें फेर

लीं, तो पाकिस्तान ने चीन पर डोरे डालने प्रारम्भ किये। भारत-विरोधी इस मुहिम में चीन के अपने स्वार्थ हैं और वह स्वयं सब तरह से पाकिस्तान की सहायता पर उतारू है। तो अब पाकिस्तान ने चीन के साथ गठबन्धन करके और ईरान को अपने साथ मिलाकर एक नया त्रिकोण बनाना प्रारम्भ किया है।

ईरान की भी कश्मीर में कम दिलचस्पी नहीं है। पिछले दिनों वह भी सऊदी अरब के साथ-साथ कश्मीर में काफी पैसा उलीचता रहा है। सऊदी अरब तो अपने यहां मक्का-मदीना होने के कारण चिरकाल से इस्लामी जगत् का खलीफा बनने के स्वप्न देखता रहा है। इस आकाई में पाकिस्तान सदा उसका सहायक रहा है। क्यों न होता? सऊदी अरब को स्वयं अपने पेट्रो-डालर की बहुलता पर तो गर्व है ही, पाकिस्तान को सबसे अधिक आर्थिक सहायता भी उसी से मिलती है। सऊदी अरब के अमरीका से भी अच्छे सम्बन्ध हैं, इसलिए यदि कभी अमरीका को दुहने की नौबत आ ही जाए तो सऊदी अरब के माध्यम से वह भी सम्भव है; क्योंकि अमरीका भी सऊदी अरब से बिगड़ना नहीं चाहता। अरब देशों में वही तो उसका सबसे बड़ा आधार है। ईराक के साथ गत खाड़ी-युद्ध में अमरीका सऊदी अरब की सहायता के नाम पर ही तो अपनी इतनी बड़ी सेना लेकर वहां जा धमका था और सऊदी अरब ही उस सेना का मुख्य अड्डा बना था। कुवैत की मुक्ति तो 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' मात्र थी। ईराक से असली खतरा सऊदी अरब को ही था।

जब से सोवियत संघ के इस्लामी गणराज्यों ने विद्रोह का झण्डा बुलन्द कर स्वायत्तता का नारा लगाया और सोवियत संघ के विघटन का द्वार खोल दिया, तब से पाकिस्तान के मन में पुनः इस्लामी बिरादरी का घूहा फुदकने लगा है। उसने इन इस्लामी गणराज्यों में अपने व्यापारिक दूत भेज दिये हैं और व्यापार के माध्यम से वह उनमें अपने पैर जमाना चाहता है। असली उद्देश्य पाकिस्तान का यही है कि किसी न किसी तरह कश्मीर के प्रश्न को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का मुद्दा बनाकर इस्लामी बिरादरी के सहयोग से उसे हड़प ले। इसके लिए उसे छल और बल दोनों का प्रयोग करने में कोई लज्जा नहीं। ज्यों-ज्यों कश्मीर में हमारी स्थिति कमजोर होती जाती है, त्यों-त्यों पाकिस्तान को अपने मंसूबे पूरे करने की सफलता दिखाई देने लगती है।

इस स्थिति के प्रति भारत सरकार कितनी बाखबर है, यह हम नहीं जानते। परन्तु भारतीय जनता तो सर्वथा बेखबर लगती है। उसमें कहीं कोई जागरूकता इस अन्तर्राष्ट्रीय षड्यंत्र के प्रति दिखाई नहीं देती। इसीलिए हमें उसकी ओर इशारा करना पड़ रहा है।

भाई-भाई और 'बाई-बाई'

११ दिसम्बर, १९६१ को दो बड़ी घटनाएं हुई। चीन के प्रधानमन्त्री ली फंग भारत आये जो ३१ वर्ष बाद चीन के किसी प्रधानमन्त्री के भारत आने के कारण कम ऐतिहासिक महत्त्व की बात नहीं है। दूसरी घटना है — कन्याकुमारी से कश्मीर तक की श्री मुरली मनोहर जोशी की एकता-यात्रा, जो २६ जनवरी, १९६२ को कश्मीर में राष्ट्रीय ध्वज फहराने के साथ समाप्त होगी, यदि उनकी यात्रा बीच में ही न रोक दी गई, या वे गिरफ्तार न कर लिए गए।

दोनों को हमने बड़ी घटनाएं इसलिए कहा है कि दोनों का प्रभाव बहुत व्यापक और दूरगामी होने वाला है। एकता-यात्रा का राष्ट्रीय स्तर पर और ली फंग की यात्रा का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर। ली फंग से पहले उनके पिता चीनी प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई दो बार भारत आये थे। ली फंग उनके दत्तक पुत्र हैं। चाऊ एन लाई पहले-पहल सन् १९५४ में भारत आए थे। तभी 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' का नारा लगा था और नेहरू के इस रूमानी नारे ने सारे देश को आत्ममुग्ध कर दिया था। उसके बाद वे सन् १९६० में आए, पर तब उनमें उक्त नारे के प्रति वह गर्मजोशी नहीं थी, जो पहली यात्रा के समय थी। उस समय वे भारत की सामरिक तैयारी और दुर्बलता का अन्दाज़ा लगाने ही आये थे। सन् १९६२ में तो उन्होंने भारत पर आक्रमण करके अपने मन के चौर को खुलेआम उजागर कर ही दिया था। इस बीच नेहरू का भी चीन की यात्रा के बाद कुछ-कुछ मोहभंग तो हुआ था; पर अपने आपको पंचशील का प्रतिष्ठाता जताने और गुट-निरपेक्ष आन्दोलन के जनक के रूप में दो महाशक्तियों के बीच में एक तीसरी शक्ति उदित करने के यश के व्यामोह में वे लिप्त थे। यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति जनरल टीटो, मिस्र के राष्ट्रपति नासिर, इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण और चीन के प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई को एक मंच पर लाकर उन्होंने अपने उस स्वप्न को चरितार्थ करना चाहा था। पर स्वप्न तो सदा स्वप्न ही रहते हैं — प्रातःकाल उठते ही वे रात की नींद के ख्याली पुलावों की तरह सत्य और व्यवहार की दुनियां में विस्मृति में विलीन हो जाते हैं। इसलिए नेहरू अपने बनाए जिस स्वप्नलोक में विचर रहे थे, १९६२ के चीनी आक्रमण के बाद वह ऐसा चकनाचूर हुआ कि

उसके बाद वे अन्दर और बाहर दोनों ओर से टूट गए और वही उनके प्राणान्त का कारण बना।

गुट-निरपेक्ष आंदोलन उसके बाद भी किसी न किसी तरह घिसटता तो रहा, पर सर्वथा निर्जीव बन गया। जब न टीटो रहे, न नासिर, न सुकर्ण, न चाऊ एन लाई और न नेहरू — तो उन पांचों के कन्धों पर खड़ा पंचशील भी अपनी अर्थी की बाट जोहने लगा। अब जब सोवियत संघ जैसी दूसरी महाशक्ति चारों खाने चित्त हो गई और केवल एक ही महाशक्ति—अमरीका बच गई, तो इन दोनों महाशक्तिओं को सन्तुलित रखने के लिए निर्मित तीसरी शक्ति स्वयं अकृत-कार्य बन गई। अब तो वह बकरी के गले में थन की तरह व्यर्थ है।

पर संसार में अब जो नये राजनीतिक समीकरण बन रहे हैं, उनमें महाशक्ति के रूप में सबसे अधिक चीन ही उभर रहा है। उसके इस उभरते रूप को देखकर ही अमरीका ने भी उसके साथ दोस्ती का हाथ बढ़ाया, और जो चीन उसे पहले फूटी आंखों नहीं सुहाता था, उसी चीन के साथ उसकी प्रेम की पींगें बढ़ने लगीं और चीन के साथ इतने व्यापारिक और आर्थिक सम्बन्ध बढ़ाये कि अब अरबों—खरबों का आपसी व्यापार बढ़ने लगा। उधर सोवियत संघ में कम्युनिज़्म के पिंडदान के पश्चात् स्वयं चीन में भी लोकतन्त्र की आवाज उठने लगी। चीन ने जिन दस हजार विद्यार्थियों को नई वैज्ञानिक टैक्नालॉजी सीखने के लिए अमरीका भेजा था, उन्होंने वापिस लौटकर इस लोकतन्त्र की आवाज को और बुलन्द किया। पर चीन की सरकार ने अत्यन्त निर्ममता से हजारों विद्यार्थियों को मौत के घाट उतार कर उस आंदोलन को बेरहमी से कुचल दिया। चीनी शासन ने कम्युनिज़्म और उसकी तानाशाही को बरकरार रखा, पर व्यवहार में उन्मुक्त व्यापार नीति और विदेशी पूंजी-निवेश को उसने प्रोत्साहन देना प्रारम्भ कर दिया।

तब अमरीका के मन में यह इच्छा पैदा होनी स्वाभाविक थी कि जिस तरह सोवियत संघ में कम्युनिज़्म को दफनाया गया है, उसी तरह चीन में से भी जब तक कम्युनिज़्म को पूरी तरह समाप्त नहीं किया जाएगा, तब तक यह हौवा फिर कभी 'शैतान की आँत' सिद्ध हो सकता है। इसलिए उसने धीरे-धीरे चीन की आर्थिक सहायता से हाथ खींचना शुरू कर दिया। इससे चीन की चिन्ता बढ़नी भी स्वाभाविक थी।

आजकल राजनीतिक साम्राज्य के बजाय आर्थिक साम्राज्य को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इसलिए अमरीका के आर्थिक साम्राज्य से मुक्ति पाने के लिए यूरोपीय देशों ने मिलकर अपना अलग आर्थिक संघ बना लिया है और वे सब डॉलर और पौण्ड की गुलामी से निकलकर अपनी एक साझा मुद्रा की मार्फत आपसी व्यापार को बढ़ाने के लिए कटिबद्ध हुए हैं।

तभी प्रमुख एशियाई देशों का ध्यान भी इस ओर गया कि यदि यूरोपीय आर्थिक संघ बन सकता है, तो हम भी एक एशियाई आर्थिक संघ क्यों न बनाएं? संसार की तीन चौथाई आबादी तो इन एशियाई देशों में ही रहती है। यह कितने सन्ताप की बात है कि इसी तीन चौथाई आबादी पर पश्चिम की एक चौथाई आबादी आर्थिक वर्चस्व के कारण हावी है, जबकि उसकी सारी समृद्धि का दारोमदार इन्हीं एशियाई और अफ्रीकी विशाल बाजारों के दोहन और शोषण पर ही कायम है। उन पश्चिमी देशों को सारा कच्चा माल तो इन्हीं देशों से मिलता है।

एशियाई देशों में भी भारत और चीन ही इतने बड़े देश हैं कि संसार की आधी आबादी इन दोनों देशों में रहती है। यदि ये दोनों देश ही, जो विकास के मार्ग पर तेजी से अग्रसर हैं, आपस में मिलकर आर्थिक संघ बना लें, और इस आर्थिक संघ में भारत के पड़ोसी देश—नेपाल, बांग्लादेश और पाकिस्तान भी शामिल हो जाएं, तो इन सभी देशों की समृद्धि बढ़ेगी, बेरोजगारों को रोजगार मिलेगा, गरीबी दूर होगी और पश्चिमी देशों द्वारा किया जाने वाला इनका शोषण भी बन्द होगा। पर इन देशों में आपसी मनमुटाव भी इतने अधिक हैं कि वे इस दूर-दृष्टि से सोच पाने में असमर्थ हैं। एशिया में कोई ऐसा एक सर्वमान्य नेता भी नहीं है, जो यह दूर-दृष्टि औरों से मनवा सके। लोकतंत्र, उदारता, सहिष्णुता, खुलापन, सर्वमैत्री और विश्वबन्धुत्व के प्रचारक भारत से इन सभी देशों को और पश्चिम के देशों को भी बहुत आशाएं थीं; परन्तु अब भारत आन्तरिक दृष्टि से स्वयं इतना दुर्बल है कि उसके पर-उपदेश पर कोई कान देने को तैयार नहीं। यह यहाँ की राजनीतिक पार्टियों की स्वार्थपरायणता, अवसरवादिता, क्षुद्रता और येन केन प्रकारेण कुर्सी-दौड़ में सत्ता की लालसा, तथा राष्ट्रीय चिन्तन के अभाव का अवश्यम्भावी परिणाम होना था। जब भारत में ही कोई स्थिर सरकार न हो, उसकी नीतियां आए दिन बदलती रहती हों तो उसकी साख गिरेगी नहीं तो क्या होगा?

इसी सारी परिस्थिति की पृष्ठभूमि में चीन के प्रधानमंत्री के आगमन को और भारत से तीन आर्थिक समझौतों के महत्त्व को आंका जाना चाहिए। ये दोनों महान् देश ही, जो उतने ही पुरातन हैं और इतिहास के सुदीर्घकाल में परस्पर सम्बद्ध रहे हैं, यदि आर्थिक दृष्टि से निकट आ जाएं, यदि यूरोप और अमरीका से होने वाले इन दोनों देशों के व्यापार का कुछ प्रतिशत भी इन दोनों के हाथ में आ जाए, तो दोनों देशों का कायापलट हो सकता है। सच तो यह है कि केवल आर्थिक दृष्टि से ही नहीं, वैचारिक दृष्टि से भी इस समय चीन को भारत के समर्थन की अधिक आवश्यकता है। इसीलिए ली फंग ने यहाँ आकर पंचशील के पुनरुद्धार और सीमा-सम्बन्धी विवादों को दोनों देशों की गरिमा के अनुकूल सुलझाने की

बात प्रायः अपने हरेक भाषण में कही है। भारत के साथ चीन के जो तीन समझौते हुए हैं, उनसे ऐसा लगता है कि चीन को जो कुछ चाहिए था, वह तो उसे मिल गया, पर भारत को चीन से जो मुख्य अपेक्षाएं थीं, उनमें से एक भी पूरी नहीं हुई। उदाहरण के लिए पाकिस्तान को घातक अस्त्रों से और दूरमारक प्रक्षेपास्त्रों से लैस करना, काराकोरम मार्ग से ए.के.४७ रायफलों को सस्ते दामों पर पहुंचाना, जिन्हें पाकिस्तान, पंजाब और कश्मीर के आतंकवादियों को सप्लाई करता है और वे आतंकवादी प्रतिदिन दर्जनों निरीह लोगों की हत्या कर कहर ढाते हैं, अकसाईचिन के बारह हजार वर्ग मील के भारतीय भू-भाग पर जबर्दस्ती कब्जा कायम रखना, तिब्बत की स्वायत्तता को भंग कर वहां भीषण दमन करना, और तिब्बत की सीमा पर भारत की ओर प्रहार करने वाले आणविक प्रक्षेपास्त्रों को जमा करना — ये सब ऐसे कांटे हैं, जो प्रत्येक भारतवासी के हृदय को निरन्तर भेदते रहते हैं। जब तक ये कांटे नहीं निकलेंगे, तब तक भारत की आत्मा को चैन नहीं पड़ेगा।

जब तक ये पंक्तियाँ पाठकों तक पहुंचेंगी, तब तक चीन के प्रधानमंत्री अपने लाव-लशकर के साथ भारत से रवाना हो चुके होंगे। जब वे आये थे, तब भाई-भाई के नारे की कुछ-कुछ गूंज सुनाई दी थी। जब वे भारत से विदा होंगे तब भारतवासी इस 'भाई-भाई' के नारे को भूलकर अपने हृदय के कांटों को सहलाते हुए 'बाई-बाई' कर रहे होंगे।

२२ दिसम्बर १९६१



“एक अच्छा लेखक होना बड़ी बात है। एक अच्छा वक्ता होना और भी मनोहारी बात है। पर इनके साथ एक सुदृढ़ सामाजिक व धार्मिक कार्यकर्ता होना सोने पे सुहागा होने जैसा है। श्री क्षितीश जी का व्यक्तित्व इन त्रिगुणों का समन्वय है। उनके व्यक्तित्व में से इनमें से किसी भी एक तत्त्व को अलग नहीं किया जा सकता। जीवन भर स्व-अर्जित इस अनुपम साधना के फल को समाज में उन्होंने यथाशक्ति पुष्कल रूप में बिखरा दिया है।... वे एक स्वावलम्बी, स्वाभिमानी, परिश्रमी, अध्यवसायी, कर्मठ, चुस्त, अध्येता, सुविज्ञ, संस्कृत के पण्डित और विवेकशील सम्पादक हैं। अत्यन्त जागरूक, आत्मीय, भावपूर्ण, अतिथेय—धर्मपरायण, हिन्दी-सेवा में तत्पर, व्यस्त लेखक — बस यही है श्री क्षितीश वेदालंकार का स्वरूप।”

-त.शि.क. कण्ठन

सामाजिक कार्यकर्ता, लेखक

८, अलवर पेट, मद्रास

